ध्यान दें:

1

सांख्य दर्शन का सामान्य परिचय

आस्तिक तथा नास्तिक भेद से भारतीय दर्शन दो प्रकार से बँटा हुआ है। नास्तिक दर्शनों में तीन प्रकार के नास्तिक दर्शन प्रसिद्ध हैं। जो चार्वाक दर्शन, बौद्ध दर्शन तथा जैन दर्शन हैं। आस्तिक दर्शनों में सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा तथा उत्तर मीमांसा हैं। यहां पर 'आस्तिक' इस पद से ईश्वर को स्वीकार किया गया है। जो दर्शन वेद के प्रमाण को स्वीकार करते हैं वे आस्तिक दर्शन तथा जो वेद के प्रमाण को स्वीकार नहीं करते नास्तिक दर्शन कहलाते हैं। भारतीय दर्शनों में सांख्य दर्शन को सबसे प्राचीन दर्शन माना गया है। क्योंकि छः भारतीय दर्शनों में सांख्य दर्शन सबसे श्रेष्ठ है। भारतीय दर्शनों में सबसे प्राचीन दर्शन सांख्य दर्शन के होने के कारण इस दर्शन के ज्ञान के बिना अन्य भारतीय दर्शनों का ज्ञान पूर्ण रूप से होना सम्भव नहीं है। महाभारत आदि ग्रन्थों में सांख्य दर्शन का महान् प्रभाव दिखाई देता है। गीता में तो सांख्य दर्शन बहुत ही स्पष्टता से दिखाई देता है। सांख्य दर्शन का प्रभाव वेदान्त दर्शन में भी है। भगवत्पाद शङ्कराचार्य ने ब्रह्मसूत्र के भाष्य में कहा है कि अद्वैत वेदान्त का प्रधान प्रतिपक्ष सांख्य दर्शन है। सांख्य दर्शन के बहुत सारे विषय वेदान्त दर्शन में स्वीकार किये गये हैं। प्राचीन साहित्य में तो सांख्य दर्शन का प्रभाव बहुत स्पष्ट तरीके से दिखाई देता है इसलिए सांख्य दर्शन भारतीय दर्शनों के ज्ञान के लिए बहुत ही उपकारक सिद्ध होता है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप सक्षम होंगे;

- सांख्य दर्शन का विस्तार पूर्वक परिचय प्राप्त कर पाने में;
- सांख्य शब्द के अर्थ विषयों का परिचय प्राप्त कर पाने में;
- सांख्य दर्शन के आचार्यों का तथा उनके ग्रन्थों का परिचय प्राप्त करने में;
- सांख्य दर्शन में स्वीकार किये गये तत्वों का सामान्य ज्ञान प्राप्त करने में;
- सांख्य दर्शन के मत में पुरुष के स्वरूप का तथा पुरुष को स्वीकार करने आदि विषयों का विस्तार से ज्ञान प्राप्त करने में;
- 'पुरुष के बन्धन का नाम क्या है? मोक्ष का नाम क्या है?' इस प्रकार के विषय स्पष्ट कर पाने में;

पाठ-1

सांख्य दर्शन का सामान्य परिचय

ध्यान दें:

1.1) सांख्य शब्द का अर्थ

सांख्य शब्द का संख्या से सम्बन्ध होने के कारण सांख्य कहा गया है। परन्तु विद्वानों में संख्या शब्द के अर्थ के विषय में कई प्रकार का मतभेद होने के कारण संख्या शब्द का क्या अर्थ है? यह जानना चाहिए।

संख्यां प्रकुर्वते चैव प्रकृति च प्रचक्षते।
तत्त्वानि च चतुर्विंशत् तेन सांख्यं प्रकीर्तितम्॥

इस महाभारत के वाक्य के अनुसार प्रकृति तथा पुरुष के सम्यक् विवेक ज्ञान रूप संख्या के प्रतिपादन से तथा प्रकृति आदि की चौबीस संख्याओं के प्रतिपादन से इस दर्शन का नाम सांख्य दर्शन है। कुछ लोग कहते हैं कि "पच्चीस तत्वों वाली संख्या का जहां विवेचन होता है वह सांख्य कहलाता है। और कुछ लोग यह कहते हैं कि सङ्ख यह पुरुष का पर्यायवाची तथा उसके प्रतिपादन यह दर्शन सांख्य कहलाता है। अन्य कुछ लोग तो यह भी कहते हैं कि सम् उपसर्ग पूर्वक दर्शनार्थक चक्षिङ् धातु से ल्युट प्रत्यय करने पर तथा "चक्षिङः ख्याञ्" इस सूत्र से ख्याञ् आदेश होने पर "अच्छी प्रकार से देखा गया" इस अर्थ में सांख्य शब्द निष्पन्न होता है। इसका यह अभिप्राय है कि जीव अनादि काल से अविद्या से आच्छादित है और वही अविद्या उसका बन्धन कहलाती है जिसके कारण उसे स्वरूप का ज्ञान नहीं होता है। उस वास्तविक ज्ञान के बिना दु:ख की निवृत्ति असम्भव है। इसलिए यह त्रिगुणात्मिका प्रवृत्ति पुरुष से भिन्न है तथा आत्मा को जानने वाला ज्ञान ही संख्या है। जो विवेक ख्याति है वह प्रकृति तथा पुरुष के विवेक से जानी जाती है। इसलिए महाभारत में कहा गया है

दोषाणां च गुणानां च प्रमाणं प्रविभागतः।
कञ्चिदर्थमभिप्रेत्य सा संख्येत्यभिधार्यताम्॥ इति।

इस भाव का भगवत्पाद आचार्य शङ्कराचार्य द्वारा समर्थन किया गया है । "ये जो सत्व रज तथा तमो गुण मेरे द्वारा देखे गये हैं, मैं उनसे अलग हूँ, मैं तो केवल उस व्यापार का साक्षी होकर नित्य रूप से सभी गुणों से विलक्षण उस आत्मा का ही चिन्तन करता हूं। यह सांख्य है" तथा "सांख्य को जानने वाला विद्वान् कवि कहलाता है"। अमरकोश में भी संख्या शब्द का अर्थ बुद्धि तथा पाण्डित्य मिलता है। इसलिए पच्चीस तत्वों का प्रतिपादन होने से तथा वास्तविक ज्ञान का प्रतिपादन होने से इस दर्शन का नाम सांख्य दर्शन है।

1.2) सांख्य दर्शन के आचार्य तथा ग्रन्थ

सांख्य दर्शन के प्रणेता महर्षि कपिल को माना जाता है। लेकिन उनके द्वारा लिखे गये सूत्र वर्तमान समय में अनुपलब्ध है। हालांकि वर्तमान में कुछ लोग इस प्रकार से आक्षेप करते हैं कि महर्षि कपिल के द्वारा विरचित कुछ सूत्र वर्तमान में उपलब्ध है। परन्तु उन सूत्रों में कुछ आधुनिक विद्वानों का नामोल्लेख होने के कारण विद्वान अनेकों महर्षि कपिल प्रणीत सूत्रों के रूप में स्वीकार नहीं करते हैं। लेकिन वो यह मानते हैं कि वे सूत्र महर्षि कपिल की अपेक्षा किसी प्राचीन सांख्य दर्शन के विद्वान के द्वारा लिखे गये हैं। सांख्य सूत्रों का उपदेश आचार्य कपिल ने आसुरी को और आसुरी ने अपने शिष्य पञ्चशिख को दिया। उसी शिष्य परम्परा में ईश्वर कृष्ण ने सांख्य शास्त्र को प्राप्त किया। आचार्य ईश्वर कृष्ण ने सांख्य शास्त्र को कारिकाओं के रूप में लिखा, इसलिए वर्तमान में सांख्य दर्शन का प्रमाण ग्रन्थ ईश्वर कृष्ण की सांख्य कारिका ही प्राप्त होती है। जिसमें सत्तर (70) कारिकाएं हैं। उन कारिकाओं में सांख्य दर्शन के सिद्धान्तों का संक्षेप में वर्णन मिलता है। इन कारिकाओं पर वाचस्पति मिश्र का सांख्य तत्व कौमुदी भाष्य प्रसिद्ध हैं। इन सांख्य कारिकाओं में ही सांख्य दर्शन के सभी तत्व विस्तार पूर्वक उपलब्ध हैं।

ध्यान दें:

1.3) सांख्य दर्शन में प्रवृत्ति का कारण

श्रीमान् ईश्वरकृष्ण ने सांख्य कारिका के प्रारम्भ में ही सांख्य दर्शन का प्रयोजन तथा फल क्या है यह स्पष्ट कर दिया है। प्रथम कारिका के अनुसार

दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपघातके हेतौ।
दृष्टे साऽपार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात् ॥

यहां पर दुःखत्रय से तात्पर्य है आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक दुःख। इन दुःखों के अभिघात अर्थात् इनको दूर करने हेतु विवेकी पुरुषों में ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न होती है। सामान्य रूप से लोक में देखा गया है कि सरलता से प्राप्त औषधि आदि के माध्यम से भी यदि दुःखों का निवारण हो जाता है तो कठिनता से प्राप्त उस दिव्य विवेक की जिज्ञासा क्यों आवश्यक है? यह तो व्यर्थ ही है? (उत्तर) तब कहते हैं कि 'एकान्तात्यन्तोभावात्' अर्थात् दृष्ट हेतु से एकान्त दुःख की निवृत्ति अवश्यम्भावी होने के कारण अर्थात् पुनः उत्पन्न होने के कारण असम्भव है।

वस्तुतः इस जगत में दुःख ही है। अतः दुःख के आत्यान्तिक (दुबारा नहीं होने वाला) विनाश के लिए तथा दीर्घकालिक सुख के लिए मानव मोक्ष मार्ग की ओर दौड़ते हैं। वास्तविकता से वह दुःख नित्य नहीं है तथा उसका निवारण भी कठिन नहीं है। वह दुःख तीन प्रकार का है आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक। आध्यात्मिक दुःख भी दो प्रकार का होता है शारीरिक और मानसिक। शरीर को मानकर होने वाला दुःख शारीरिक दुःख कहलाता है, जो वात, पित्त, तथा कफ की विषमता के कारण होता है। अन्तः करण को मानकर होने वाला दुःख मानसिक दुःख कहलाता है। जो काम, क्रोध , लोभ, मोह, भय, ईर्ष्या, विषाद तथा विषयादि की प्राप्ति अप्राप्ति के रूप में होता है। इस प्रकार शरीर में आन्तरिक होने के कारण आध्यात्मिक दुःख कहलाता है। बाह्य कारकों से होने वाला दुःख दो प्रकार का होता है आधिभौतिक तथा आधिदैविक। वह आधि भौतिक दुःख मनुष्य, पशु, (गाय घोड़ा आदि) सरीसृप (सर्पादि) स्थावर (लकड़ी पत्थर आदि) से होता है तथा आधिदैविक यक्ष, राक्षस, विनायक तथा ग्रह आदि के द्वारा होता है।

इन सभी दुःखों से आत्मा को पीड़ा पहुंचती है जिसे हटाया नहीं जा सकता। वस्तुतः दुःखों को कोई भी नहीं चाहता तथा संसार में ऐसा कोई भी प्राणी दृष्टिगोचर नहीं हुआ है जो इन सभी दुःखों से परेशान नहीं हुआ हो तथा जो सुख नहीं चाहता हो। दुखः ही मन में उद्वेग उत्पन्न करते हैं। इसलिए इन तीनों दुःखों के निवारण की इच्छा मनुष्यों को होती है।

मान लो की तीन प्रकार के दुःख होते हैं तथा हँसते-हँसते इनका उपाय भी हो सकता है जैसे इनके निवारण के लिए कुछ शास्त्र वर्णित उपाय भी हैं इसलिए फिर भी दुःखों के निवारण की जिज्ञासा उचित नहीं है। जिज्ञासा क्यों करें? क्योंकि दुःखों के निवारण हेतु तो प्रत्यक्ष और सरल उपाय भी हैं। संसार में एक उक्ति भी प्रसिद्ध है।

अर्के चेन्मधु विन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेत्।
इष्टस्यार्थस्य संसिद्धौ को विद्वान् यत्नमाचरेत्॥ इति

शारीरिक दुःख के निवारण के लिए तो सरलता से प्राप्त सौ उपाय वैद्यों के द्वारा बताये गये हैं। तथा सुन्दरी, पान, भोजन, चन्दन, वस्त्र लङ्कारादि विषयों की प्राप्ति के द्वार मानसिक सन्ताप निवारण के सरल उपाय हैं। ऐसे ही आधिभौतिक दुःखों को उस स्थान से दूर जाकर के दूर किया जा सकता है तथा आधिदैविक दुःखों को रत्नधारण, मन्त्रजप तथा दिव्यौषधि आदि उपायों से दूर किया जा सकता है । अतः तीनों दुःखों के लिए अन्य जिज्ञासा करना उचित नहीं है। तब कहते हैं कि "एकान्तात्यन्ततोऽभावात्"

ध्यान दें:

अर्थात् सुन्दरी, नीति, शास्त्राभ्यास, मन्त्र तथा औषधि आदि के माध्यम से भी आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक दु:खों निवृति अदर्शन पूर्वक तथा अनैकान्तिक है। इनके द्वारा दु:ख के निवारण होने पर भी पुन: उस दु:ख के उत्पन्न होने से वह दु:ख अनान्तिक (जिसका पूर्ण अन्त नहीं होता) है इसलिए सरलता से प्राप्त होने वाले दृष्ट उपाय भी एकान्तिक तथा आत्यान्तिक दु:ख की निवृत्ति करने में सक्षम नहीं है। इसलिए यह जिज्ञासा (दु:ख निवारण जिज्ञासा) व्यर्थ नहीं है।

अत: सभी प्रकार के दु:खों का हमेशा के विनाश के लिए यह जिज्ञासा आवश्यक है और हमेशा के लिए दु:खों का नाश ही इस शास्त्र का प्रयोजन सिद्ध होता है।

पाठगत प्रश्न 1.1

1. छ: भारतीय दर्शनों में आस्तिक दर्शन कितने हैं?
2. ये आस्तिक दर्शन किसलिए है?
3. सांख्य दर्शन के प्रवर्तक कौन हैं?

   (क) गौतम (ख) कणाद (ग) कपिल (घ) जैमिनि
4. सांख्य कारिका के लेखक कौन है?

   (क) ईश्वरकृष्ण (ख) वाचस्पतिमिश्र (ग) आसुरी (घ) सदानन्दयोगी
5. तीन दु:ख कौन-कौन से हैं?
6. सांख्य शास्त्र का प्रयोजन क्या है?

1.4) पच्चीस तत्व

सांख्य दर्शन में पच्चीस प्रकार के तत्व स्वीकार किए गये हैं। वो हैं (1) पुरुष, (2) प्रकृति, (3) महत्त्व, (4) अहङ्कार, (5) मन, (6) चक्षु, (7) कान, (8) नासिका, (9) जिह्वा, (10) त्वचा ये पांच ज्ञानेन्द्रियाएँ हैं तथा (11) मुख (12) हाथ, (13) पैर, (14) गुह्येन्द्रि, (15) शिश्न ये पांच कर्मेन्द्रियाएँ हैं, (16) शब्द, (17) स्पर्श, (18) रूप, (19) रस, (20) गन्ध ये पांच तन्मात्राएं कही जाती है तथा (21) आकाश, (22) वायु, (23) अग्नि, (24) जल, (25) पृथ्वी ये पांच महाभूत होते हैं यहां पर तत्व शब्द का अर्थ पदार्थ है। इसलिए सांख्य शास्त्र में पच्चीस पदार्थ माने गये हैं।

1.5) तत्वों का चार प्रकार से विभाग

इन तत्वों का फिर कार्य कारणादि भेद से चार प्रकार का विभाग किया गया है वो है, केवल विकृति, तथा अनुभव रूप। यहां प्रकृति पद से उपदान कारण, विकृति पद से कार्य को बोध करना चाहिए। इसी प्रकार से कुछ पदार्थ उपादान कारण रूप, कुछ पदार्थ कार्यरूप है। अत: सांख्यकारिका में कहा गया है

मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्या: प्रकृतिविकृतय: सप्त।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृति: न विकृति: पुरुष:॥ [सांख्यकारिका-३]

ध्यान दें:

1.6) केवल प्रकृति

सबसे प्रधान केवल प्रकृति है, वह ही सबका कारण है लेकिन उसका कोई कारण नहीं है। इसलिए वह प्रकृति कारण मात्र कही जाती है तथा वही मूल प्रकृति है। यहाँ पर प्रकृति इस प्रधान पद से मूल प्रकृति को जानना चाहिये। यह किसी की भी विकृति नहीं है इसलिए इसे अविकृति कहा जाता है। प्रधान से महत्व की उत्पत्ति होती है और महत्व का उत्पादन कारण केवल प्रकृति है। व्युत्पत्ति के अनुसार जो अच्छी प्रकार से कार्य करती है तथा उत्पादन करती है वह प्रकृति कही जाती है तथा जो अन्य तत्व को उत्पन्न करने वाला कारण है वह प्रकृति है। वह मूल प्रकृति सत्व, रज तथा तमो गुण की साम्य अवस्था है। महत् आदि तत्वों की मूल होने के कारण इसे मूल प्रकृति कहा जाता है क्योंकि इसका अन्य कारण (उत्पन्न करने वाला) नहीं है। यदि मूल प्रकृति का भी कारण स्वीकार किया जाए क्योंकि प्रधान का जो कारण होता है उसका भी कोई कारण होना चाहिए। नहीं तो अनवस्था दोष आ जाता है। इसके निवारण हेतु सांख्य सूत्र लिखा गया है **"मूले मूलाभावादमूलं मूलम्"**। अर्थात् मूल में मूल का अभाव होने से वह मूल कहलाता है।

1.7) प्रकृति की विकृतियां

जो पदार्थ किसी तत्व का कारण होते हैं वह प्रकृतिः कहलाता है तथा जो किसी तत्व का कार्य तथा विकृति अर्थात् कार्य तथा कारण दोनों होते हैं वह प्रकृति विकृति कहलाते हैं। जैसे महत् से अहङ्कार की उत्पत्ति होती है इसलिए महत् अहङ्कार की प्रकृति है तथा विकृति मूल प्रकृति है। अहङ्कार से शब्दादि पञ्चतन्मात्राएं तथा श्रोत्रादि ग्यारह इन्द्रियां उत्पन्न होती है इस कारण से पञ्चतन्मात्राओं की तथा ग्यारह इन्द्रियों की प्रकृति अहङ्कार है तथा विकृति 'महत्'। इसी प्रकार पञ्चतन्मात्राओं से क्रमशः आकाशादि पञ्चमहाभूतों की उत्पत्ति होती है इसलिए पञ्चतन्मात्र आकाशादि पञ्चमहाभूतों की प्रकृति है तथा विकृति अहङ्कार है । इसी प्रकार महत् अहङ्कार पञ्चतन्मात्राएं सात पदार्थ माने गये हैं। पूर्वापर के माध्यम से विकृति रूप है तथा उत्तरोत्तर के माध्यम से प्रकृति रूप है। इस प्रकार प्रकृति तथा विकृति दोनों रूप सिद्ध होते हैं।

1.8) केवल विकृति

आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी पञ्चमहाभूत हैं। श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, जिह्वा, नासिका पांच ज्ञानेन्द्रियाएँ हैं। मुख, हाथ, पैर, गुह्य तथा शिश्न ये कर्मेन्द्रियाएं हैं तथा मन इस प्रकार से ये सोलह पदार्थ केवल विकृति है। आकाशादि पञ्चमहाभूत पञ्चतन्मात्राओं से उत्पन्न होते हैं, अतः वे पञ्चतन्मात्राओं की विकृति है। श्रोत्रादि ग्यारह इन्द्रियाँ अहङ्कार से उत्पन्न होती है इसलिए वे अहङ्कार की विकृति है। उसके बाद पञ्चमहाभूतों की ग्यारह इन्द्रियों की तथा सोलह पदार्थों की अन्यों से उत्पत्ति होती है, अन्यों से उत्पत्ति होने के कारण ये केवल विकृति रूप में ही सिद्ध होते हैं।

यदि सामान्य रूप से देखा जाए तो एकादश इन्द्रियों से अन्य कुछ और उत्पन्न नहीं होने के कारण ये विकृति रूप में ही सिद्ध होते हैं परन्तु आकाशादि पञ्चमहाभूतों से गौ, घट, वृक्ष आदि की उत्पत्ति होती है तथा गौ घट वृक्षादि से दुग्ध बीज आदि की उत्पत्ति होती है और दुग्ध बीजादि से दधि अङ्कुरादि की उत्पत्ति देखी गयी है। इसलिए पञ्च महाभूतों में केवल विकृतित्व सिद्ध नहीं होता है। इसलिए पञ्चमहाभूतों की प्रकृति और विकृति इन दोनों का वर्णन समुचित है। अतः कहा गया है कि भले ही पृथ्वी आदि के गो घट वृक्षादि तथा गो घट वृक्षादि के दुग्ध बीज आदि और दुग्ध बीजादि के दही अङ्कुर आदि विकार हैं फिर भी वे पृथ्वी आदि तत्वों से अलग नहीं है स्थूल और इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य होने

ध्यान दें:

के कारण सम ही है। जिस प्रकार स्थूलेन्द्रियग्राह्यधर्म पृथ्वी आदि में है वैसे ही किसी विशेष का अभाव होने के कारण गौ वृक्षादि में भी है। जहां तत्वों में अन्तर है वहां स्थूलेन्द्रियों के ग्राह्य होने के कारण परस्पर तारतम्य तो है ही। यहां पर तत्वान्तर उपादान केवल उपादान ही नहीं अपितु प्रकृति कहलाता है। इसी प्रकार पृथ्वी गो, घट, वृक्षादि भी उत्पादन कारण है न कि तत्वान्तर। इस प्रकार तत्वान्तर के अभाव के कारण पृथ्वी आदि में प्रकृतित्व सम्भव नहीं होता है, अपितु विकृतित्व ही सिद्ध होता है इसलिए सोलह पदार्थ केवल विकृति कहलाते हैं।

1.9) अनुभयरूप (पुरुष)

पुरुष विकृति नहीं है। क्योंकि वह न तो किसी की प्रकृति है और न किसी की विकृति। पुरुष न तो किसी से उत्पन्न होता है और न पुरुष से कोई उत्पन्न होता है। इसलिए पुरुष प्रकृति और विकृति दोनों ही प्रकार का नहीं होकर केवल अनुभय रूप है। सामान्य रूप से देखा गया है कि सजातीय कार्य का कोई न कोई कारण अवश्य होता है जैसे घट रूपी कारण का मिट्टी कारण है लेकिन पुरुष विजातीय होने के कारण न तो कार्य है और न ही कारण। वह तो इन दोनों का साक्षी है। इसलिए इसे अविकृति कहा गया है। इस प्रकार से पच्चीस तत्वों के केवल प्रकृति, विकृति, केवल विकृति तथा प्रकृति और विकृति दोनों से रहित इस प्रकार चार विभाग होते हैं।

प्रश्न अब एक और शङ्का उत्पन्न होती है कि प्राण और काल इन दोनों के और होने के कारण केवल पच्चीस ही तत्व मानना उचित नहीं है। (सत्ताईस तत्व माने जाएं)। उत्तर: इन्द्रियों की साधारण वृत्ति ही प्राण है न कि और तत्व, उसी प्रकार काल भी भूत, भविष्य और वर्तमान का स्वरूप है न कि कोई पदार्थ इसलिए स्वतन्त्र रूप से काल का भी निरूपण नहीं होने के कारण पच्चीस ही पदार्थ है, न तो इससे अधिक और न इससे कम। अत: सांख्य प्रवचन भाष्यकार ने कहा है कि- "प्रकृति का कार्य महत्व और महत्व का कार्य अहङ्कार है । अहङ्कार के दो कार्य हैं, तन्मात्राएँ तथा दोनों प्रकार की इन्द्रियाँ। यहाँ पर दोनों प्रकार की इन्द्रियाँ बाह्य और आभ्यन्तर भेद होने के कारण ग्यारह प्रकार की होती है। तन्मात्राओं का कार्य है पञ्चस्थूलभूत है। स्थूल शब्द से तन्मात्राओं के सूक्ष्म भूतत्व को जानना चाहिए। और पुरुष तो कार्य तथा कारण दोनों से ही विलक्षण है। इसलिए पच्चीस ही पदार्थों का समूह है, इनके अतिरिक्त दिशा काल और आकाश भी इनमें समन्वित होने के कारण और कोई अन्य पदार्थ नहीं है।

1.10) पुरुष का स्वरूप

पच्चीस तत्वों में मुख्य तत्व केवल दो ही है पुरुष तथा प्रकृति। पुरुष साक्षी, दृष्टा, अकर्ता तथा मध्यस्थ है। पुरुष का स्वरूप सांख्यकारिका में कहा गया है

तस्माच्च विपर्यासात् सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरुषस्य।
केवल्यं माध्यस्थं द्रष्टत्वमकर्तृभावश्च॥ इति। [सांख्यकारिका -19]

पुरुष ही साक्षी अर्थात् चेतन दृष्टा और अकर्ता है। पुरुष के दृष्टा होने के कारण ही उसमें अकर्तृत्व तथा साक्षी के लक्षण पाये जाते हैं। दृष्टा हमेशा चेतन ही होता है न कि अचेतन। इसलिए पुरुष चेतन होने के कारण सभी का दृष्टा न कि किसी का भी कर्ता। वह केवल स्वरूप है। तीनों दु:खों के आत्यन्तिक अभाव के कारण वह केवल्य स्वरूप कहा जाता है। पुरुष में किसी भी दु:ख का लेश मात्र भी नहीं है। इसलिए उसे केवल पुरुष कहा जाता है और वह ही मध्यस्थ तथा उदासीन कहा जाता है। वह मध्यस्थ क्यों है? ऐसा प्रश्न करने पर सांख्य तत्व कौमुदी में वाचस्पति मिश्र कहते हैं कि "सुखी तो सुख से तृप्त रहता है और दु:खी दु:ख से द्वेष करता रहता है अत: इन दोनों में एक भी मध्यस्थ नहीं

ध्यान दें:

हो सकता। मध्यस्त इन दोनों से रहित ही कहलाता है। इसलिए मध्यस्थ को उदासीन भी कहते हैं"। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥
यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत् प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥ इति। [श्रीमद्भगवद्गीता-2.56-57]

पुरुष सुख और दुःख से अतीत रहता है सुख और दुःख का तो लेप उसमें टिकता ही नहीं है। उसे भय तथा क्रोध होता ही नहीं है तथा शुभ या अशुभ प्राप्त करते उसको न तो आनन्द होता है और नहीं द्वेष होता है।

पुरुष ही चेतन तथा उत्पत्ति एवं विनाश से रहित है वह किसी का भी कारण नहीं है। अपितु वह सदा जल में कमल की भाँति रहता है। जैसै कमल जल में होता हुआ भी जल से लिप्त नहीं होता उसी प्रकार सभी जगह पर होने पर भी पुरुष कर्ता भोक्ता आदि धर्मों के आश्रय में नहीं होता है। उसका इस प्रकार से अनुमान लगाया जाता है कि "पुरुष कर्ता के अभाव से तथा कारण के अभाव से जो नहीं है वह हमेशा नहीं है इस प्रकार की बुद्धि वाला होता है।" इसका यह अर्थ होता है कि पुरुष कर्तृत्व धर्म अभाव वाला होता है तथा कारण धर्म अभाव वाला होता है। जैसे जो पदार्थ कर्तृ धर्म भाव वाला होता है वह पदार्थ कारण धर्म भाव वाला भी होता है। जैसै बुद्धि (महत् तत्व) कर्तृत्व अभाव वाली नहीं है अपितु कर्तृत्व धर्म वाली है, इसलिए वह कारण के अभाव वाली भी नहीं है, अपितु कारणत्व धर्म वाली होती है।

इस अनुमान से पुरुष कर्तृत्व अभाव वाला सिद्ध होता है तथा 'जो कर्ता होता है वह ही भोक्ता भी होता है' इस नियम से भोक्तृत्व धर्म भी पुरुष में नहीं आता है। इसलिए 'न तो पुरुष कर्ता है और न ही भोक्ता' यह भी सिद्ध हो जाता है। लेकिन **'संघातपरार्थत्वात्'** (सांख्यकारिका-17) इस कारिका में पुरुष के भोक्तृत्व का वर्णन है। 'यदि पुरुष में भोक्तृत्व है तो फिर पुरुष नहीं है' यह कथन भी उचित नहीं है क्योंकि कहा गया है कि संघातपरार्थत्वात् इस कारिका में जो पुरुष का भोक्तृत्वभाव कहा गया है वह वास्तविक रूप बुद्धिनिष्ठ पुरुष पर भोक्तृत्व भाव का आरोप ही है क्योंकि सांख्य की दृष्टि से बुद्धि ही बुद्धि का ही भोक्तृत्व सिद्ध होता है पुरुष तो परमार्थ होने से अभोक्तृत्व सिद्ध होता है। अब प्रश्न यह होता है कि बुद्धि के जैसे पुरुष का भी यदि कारणत्व स्वीकार कर लिया जाए तो क्या नुकसान है? तब यहाँ पर कहा गया है कि यदि ऐसा मानते हो तो पुरुष का भी घटादि कार्यों के जैसे ही उपादान कारण भी मानना चाहिए तथा तब उपादान कारण से कार्य का अभेद होने के कारण घटादि के नाश के जैसे पुरुष का भी नाश सिद्ध होता है। ऐसा होने पर तो श्रुति स्मृति आदि से विरोध होने के कारण यह अनिष्ट हो जाएगा। क्योंकि श्रुतियों में कहा गया है "अरे यह आत्मा तो अविनाशी तथा अजर (जिसको मारा नहीं जा सके) धर्म वाला है।" अर्थात् श्रुतियों के द्वारा आत्मा का स्वरूप विनाश धर्म से रहित वाला बताया गया है। "आत्मा का जन्म नहीं होता" "न यह कभी जन्मता है और न कभी मरता है" इस प्रकार से श्रुति स्मृति आदि के द्वारा आत्मा का जन्म-मरण आदि विकारों से अलग होना सिद्ध होता है। इससे पुरुष का तो अकारणत्व ही मानना चाहिए। इस प्रकार (यदि कारण होता तब ही) पुरुष का घटादि कारणों में कार्य कारण के अभेद से तथा नाश होता है तथा पुरुष सर्वथा कूटस्थ होने के कारण पुरुष में कारणत्व धर्म सिद्ध नहीं होता है। (अर्थात् पुरुष का कभी नाश ही नहीं होता है)।

वह पुरुष सर्वव्यापी है। उसकी गति औपाधिकी (उसकी नहीं होते हुए भी उसे प्रदान की गई) है तथा देह के सम्बन्ध होने से ही पुरुष में गति का आरोपण किया जाता है। इसलिए सूत्र में कहा गया

ध्यान दें:

हैं कि "उसकी आकाश के जैसे उपाधि होने के कारण श्रुतियों ने अन्यत्र गति बताई है"। पुरुष को निर्गुण कहा गया है, क्योंकि सुखादि पुरुष को उपाधिवत् प्राप्त होते हैं लेकिन ये सब पदार्थ पुरुष से अतिरिक्त ही सिद्ध होते हैं। (अब यहां पर यह प्रश्न किया जाता है कि) प्रलय के समय में अन्तःकरण के अभाव होने के कारण जो अदृष्ट है उसका आधार ही नहीं होना चाहिए। (उत्तर) तब कहते हैं कि सांख्य शास्त्र की दृष्टि में अदृष्ट का आत्यन्तिक विनाश स्वीकार नहीं किया गया है अपितु उसकी सूक्ष्म शरीर वत् स्थितिः स्वीकार की गई है। सांख्य शास्त्र के मत में तो पुरुष ज्ञान का अधिकरण नहीं होता हुआ स्वयं ज्ञान स्वरूप और स्वप्रकाश होता है। सांख्य प्रवचन भाष्य में कहा गया है कि- "वैशेषिक लोगों ने कहा है कि पूर्व प्रकाश रूप का जड़ (प्रकृति), आत्मा तथा मन के संयोग से ज्ञान रूपी प्रकाश उत्पन्न होता है, परन्तु ऐसा नहीं है। क्योंकि संसार में देखा गया है कि जड़ पदार्थों में प्रकाश नहीं होता है जैसे मिट्टी आदि में प्रकाश नहीं है। इसलिए सूर्यवत् ही प्रकाश स्वरूप उस पुरुष का है। स्मृतियों में कहा भी गया है-

यथा प्रकाशतमसोः सम्बन्धो नोपपद्यते।
तद्वदैक्यं न शंसध्वं प्रपञ्चपरमात्मनोः॥
यथा दीपः प्रकाशात्मा ह्रस्वो वा यदि वा महान्।
ज्ञानात्मानं तथा विद्यात्पुरुषं सर्वजन्तुषु॥

भावार्थः- (जैसे प्रकाश और अन्धकार का आपस में संबंध नहीं होता है उसी प्रकार प्रपञ्च और आत्मा का सम्बन्ध नहीं है, जैसे दीपक प्रकाश की स्थिति होती वैसी ही आत्मा की भी होती है। ज्ञानी व्यक्ति आत्मा को सभी जन्तुओं में देखता है)।

पुरुष में सत्वादि त्रिगुण नहीं होते हैं इसलिए उसे गुण रहित कहते हैं तथा प्रकृति से वह नितान्त विलक्षण होने के कारण अव्यक्त विलक्षण माना जाता है। प्रकृति के महत्वादि कार्यों के कोई भी अंश इसमें सम्मिलित नहीं है तथा पुरुष का भी कोई भी अंश प्रकृति में सम्मिलित नहीं है अतः यह व्यक्त तथा अव्यक्त भाव से विलक्षण है। आत्मा को तो कोई योग सम्पन्न तत्वज्ञ व्यक्ति ही जानते हैं। यह सभी में नहीं होने के कारण इसमें असर्वसाधारणत्व धर्म पाया जाता है अतः वह असाधारण है। अथवा प्रति शरीर में पुरुष की भिन्नता होने के कारण वह असाधारण है तथा वह प्रधान आदि के जैसे जड़ नहीं है अपितु चेतना से युक्त होने के कारण चेतन है। जिस प्रकार मिट्टी घट शराव आदि अनेक कार्य उत्पन्न करती है परन्तु वैसे कोई भी कार्य उत्पन्न नहीं करता है, अतः यह अप्रसवधर्मी होने के कारण स्वरूप तथा विरूप परिणाम से हीन हैं। इसके अब यह त्रिगुण रहित, अविषयी, असाधारण, चेतन तथा अप्रसवधर्मी पुरुष सिद्ध होता है। पुरुष के त्रिगुण रहितादि धर्म ही प्रकृति में तथा उसके कार्य महत्वादि में पाये जाते हैं तथा आत्मा प्रति शरीर में भिन्न होने के कारण अनेक है।

पुरुष में जन्यत्व का अभाव होने के कारण इसका कोई उत्पादक नहीं है अतः यह नित्य है। किसी स्थान में आत्मा का अभाव हो सकता है लेकिन वह (पुरुष) व्यक्तित्व होने के कारण सर्वत्र रहता है। आत्मा में कोई क्रिया नहीं होती है, क्रिया नहीं होने के कारण आत्मा निष्क्रिय होती है। आत्मा किसी का आश्रय लेकर के कहीं पर भी नहीं रुकती है अपितु स्वयं ही विभुत्व के कारण सभी जगह व्याप्त रहती है, अतः इसमें अनाश्रितत्व होने के कारण यह अनाश्रित है। जैसे धुआँ अग्नि के बिना नहीं हो सकता है अर्थात् जहाँ अग्नि होती है वहाँ धुआं रहता है पर आत्मा में यह 'प्रधानानुमापक' नहीं है अर्थात् किसी के साथ भी सम्बन्ध नहीं होने के कारण यह अलिङ्गत्वात् (अननुमापकत्वात्) अलिङ्ग कहलाती है। वस्त्रों में जैसे धागे रूप में घड़े में जैसे मिट्टी के रूप में अवयव विभाग होते हैं परन्तु आत्मा में इस प्रकार के कोई अवयव विभाग नहीं होने के कारण यह निरवयव है। पुरुषों में जैसे अंश के रूप में पुत्र पौत्रादि होते हैं, दीपक में भी जैसे तेल बत्ती प्रकाश आदि होते हैं, प्रकृत अंश जैसे महत्, महत् से अहङ्कार आदि होते हैं, इस प्रकार से आत्मा में अंश नहीं होते हैं तथा इससे किसी की भी उत्पत्ति नहीं होने के

ध्यान दें:

कारण यह स्वतन्त्र है और आत्मा शुद्धस्फटिक के जैसे स्वच्छ, निर्गुण तथा आकाश के सदृश विमू, नित्य, तथा अनन्त सिद्ध होती है। इसलिए कहा गया है

हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम्।
सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम्॥ [सांख्यकारिका - 10]
त्रिगुणमविवेकि विषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि।
व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान्॥ इति। [सांख्यकारिका - 11]

पाठगत प्रश्न 1.2

1. पच्चीस तत्वों के चार विभाग कौन-से हैं?
2. अनुभय रूप क्या है?
3. केवल विकृति कितनी हैं?
4. प्रकृति-विकृति कितनी है?
5. प्रधान को क्यों केवल प्रकृति कहा जाता है?
6. सांख्य की दृष्टि में पुरुष कौन है?

1.11) पुरुष सद्भाव हेतु

सांख्य शास्त्र में पुरुष को पच्चीस तत्वों में सबसे श्रेष्ठ तत्व माना गया है। लेकिन चेतन निर्विकार पुरुष को स्वीकार करने का क्या हेतु है अर्थात् पुरुष के अस्तित्व का क्या प्रमाण है इस विषय की सांख्य कारिका में आलोचना की गई है, जैसा की कारिका में कहा गया है

संघातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात्।
पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात् केवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च॥ इति। -[सांख्यकारिका -17]

यहां कारिका में पुरुष के सद्भाव के पांच हेतु बताए गये हैं। वो हैं

(क) संघातपरार्थत्वात्, (ख) त्रिगुणादिविपर्ययात्, (ग) अधिष्ठानात्,

(घ) भोक्तृभावात् और (ङ) केवल्यार्थप्रवृत्ति है।

1.11.1) संघात परार्थ

संघात का अर्थ समूह होता है, यहां संघातपद की प्रधानता से उत्पन्न सभी कार्य (पञ्चभूतात्मक शरीरादि) स्वीकार किए गये। इसी प्रकार समूह अर्थ से स्वार्थ क्रिया का ग्रहण किया गया है तथा परार्थ पद से स्वार्थ इतर (दूसरों के लिए) कार्य भोग अपवर्ग तथा फल का ग्रहण अभीष्ट है। सभी प्रकृति से उत्पन्न कार्य अचेतन हैं, वे स्वयं के लिए क्रिया नहीं करते हैं। संसार में देखा भी गया है कि सभी अचेतन वस्तु जो प्रकृति से उत्पन्न हुई है वे भी किसी चेतन के प्रयोजन के लिए ही होती है। इसी प्रकार प्रकृति आदि जितने भी अचेतन पदार्थ हैं वे भी किसी चेतन के प्रयोजन के लिए ही है। इसलिए कोई चेतन तो है ही जिसके प्रयोजन के लिए भोग अपवर्ग के लिए प्रकृति आदि अचेतनों की प्रवृत्ति दिखाई देती है, ऐसा स्वीकार करना चाहिए तो फिर यह भी स्वीकार करना चाहीए कि कोई चेतन पुरुष भी है।

ध्यान दें:

1.11.2) त्रिगुणादि विपर्यया

संघात शब्द से संघात के आन्तर्य का ही बोध होता है न कि असंघात आत्मा का। देखा गया है कि शय्या आसन शरीर आदि संघातार्थक है। इसलिए अव्यक्तादि संघातों का भी संघातान्तर (संघात के अन्दर) रूप में बोध होता है, न कि अव्यक्त से अतिरिक्त पुरुष का। यदि संघात का संघातान्तर के परार्थ स्वीकार भी करते हैं तो उसका भी संघात के संघातान्तर के प्रति परार्थ स्वीकार करना चाहिए फिर उसमें भी संघातान्तर, ऐसा करने अनवस्था दोष उत्पन्न होता है। अत: सांख्य शास्त्र में अनवस्था दोष को निवारण की व्यवस्था है ही। तो दोष निवारण के लिए हेतु कहते हैं कि उससे संघातान्तर की कल्पना गौरव के लिए होती है। अब यहां पर प्रश्न होता है कि प्रमाण के होने से कल्पना गौरव दोष उत्पन के लिए ही है। तब उत्तर में कहते हैं कि यहाँ पर संघात परार्थ मात्र ही अन्वय करना चाहिए न कि संघात से संघातान्तर के प्रति परार्थ भाव का। इस प्रकार अवस्था रहित पुरुष में असंघात तत्व स्वीकार करने पर त्रिगुणरहित्व, अविवेकित्व, अविषयत्व, असामान्यत्व, अचेतनत्व तथा अप्रसवधर्मि गुण भी ग्रहण करने चाहिए। वास्तविक रूप से त्रिगुणादि धर्म भी संघात के रूप में व्याप्त है और वह संघात तत्व पुरुष में नहीं है। अत: त्रिगुणादि धर्म भी पुरुष में नहीं होते हैं। इस प्रकार त्रिगुणादि धर्मों का अभाव जहां होता है वह पुरुष कहलाता है। इसलिए ईश्वरकृष्ण ने पुरुष के सद्भाव के प्रमाण को दिखाते हुए सांख्यकारिका में उल्लेख किया है कि **'त्रिगुणादिविपर्ययाद्'।** अर्थात् सत्व, रज तथा तम ये तीन गुण होते हैं और इन तीनों गुणों की प्रधानता से महतत्वादि उत्पन्न होते हैं। अत: वे सब त्रिगुणात्मक कहलाते हैं। यहां पर त्रिगुण पद से **''त्रिगुणमविवेकि विषय: सामान्यम् अचेतनं प्रसवधर्मि''**

इस कारिका में उक्त धर्मों को जानना चाहिए। जो त्रिगुण के आदि तथा अन्त: हैं वे संघात कहलाते हैं। पुरुष संघात नहीं होने के कारण पुरुष में त्रिगुणादि धर्म भी नहीं हैं। अर्थात् त्रिगुणादि के विपर्यय का पुरुष है। अर्थात् त्रिगुणादि का अभाव जहाँ पर होता है वहीं पुरुष है। यह पुरुष के सद्भाव का द्वितीय हेतु है।

1.11.3) अधिष्ठान

पुरुष को स्वीकार करने का तीसरा हेतु है अधिष्ठानत्व। अधिष्ठान से तात्पर्य है कि जिस किसी का आश्रय लेकर के जो भी कुछ रुकता है वह (आश्रय को ग्रहण करने वाला) अधिष्ठाता कहलाता है। किनका अधिष्ठाता? तो कहते हैं त्रिगुण वालों का, सभी का अधिष्ठाता पुरुष है। इस प्रकार सुखादि आत्म सम्बन्धी पदार्थों से अलग कोई जाना जाता है तो उसे पुरुष ही समझना चाहिए। इस प्रकार से अनुमान लगाया जाता है कि महत् आदि से भी परे कोई चेतन अधिष्ठियमान है जो सुखाद्यात्मकत्व वाला अथवा संघ तत्व वाला है। जो सुख दु:ख मोह आदि से परे दिखाई देता है वह सब अधिष्ठियमान (किसी आश्रय में सुस्थिर होता है) जैसे रथ आदि सारथी आदि से अधिष्ठित दिखाई देते हैं। इस प्रकार से प्रकृति महत् आदि तत्व तथा अचेतन पदार्थों का भी कोई अधिष्ठाता होता हुआ कोई चेतन पुरुष ही है यह सिद्ध होता है। यदि महत् आदि पदार्थों का अधिष्ठाता कोई दूसरा महदादि पदार्थ भी होता है तो फिर पुरुष को अधिष्ठान रूप में स्वीकार करने का क्या प्रयोजन है? उत्तर देते हुए कहते हैं, नहीं महत् आदियों का कोई अधिष्ठाता हो ही नहीं सकता क्योंकि वह स्वयं ही अपने अधिष्ठान हैं। तब पुन: प्रश्न उत्पन्न होता है कि जो व्यापारवान् होता वह ही अधिष्ठाता होता है जैसे रथ और उसमें सारथी आदि, आत्मा तो निर्गुणत्व होने के कारण निष्क्रिय तथा व्यापार रहित है अत: इसका अधिष्ठातृत्व सिद्ध नहीं हो सकता। पुन: उत्तर देते हुए कहते हैं कि अधिष्ठाता व्यापार वाला हो यह नियम नहीं कर सकते। जैसे लोहे की मणि के जैसे व्यापार रहित आत्मा का भी सन्निधि मात्र से अधिष्ठातृत्व सिद्ध होता है। जैसा की कपिल सूत्र में कहा गया है। **"तत्सन्निधानादधिष्ठातृत्वं मणिवत्"** इति।

ध्यान दें:

1.11.4) भोक्तृभावात्

चतुर्थ: पुरुष को स्वीकारने का चौथा हेतु है भोक्तृत्व भाव। जैसे सुख तथा दु:ख भोगने योग्य होते हैं। अनुकूलता की वेदना सुख कहलाती है तथा प्रतिकूलता की वेदना दु:ख कहलाती है। सुख और दु:ख का आत्मा को अनुभव होता है। सुख और दु:ख भाग्य भाव तब ही सिद्ध होता है जब कोई चेतन भोक्ता हो। इस प्रकार से चेतन को स्वीकार किया जाता है। वह भोक्ता बुद्धि आदि के अतिरिक्त चेतन पुरुष को ही अङ्गीकार करना चाहिए। यह प्रथम व्याख्या है।

अथवा भोग्य दृश्य बुद्धि आदि है, तो दृष्टा के बिना उनको देखा भी नहीं जा सकता है अत: उनका भी जो दृष्टा है वह बुद्धि आदि के अतिरिक्त पुरुष ही है। अनुमान के अनुसार बुद्धि आदि की सिद्धि भी दृष्टा पूर्वक ही होती है तो दृश्य के रूप में घटादि होते हैं। उसी प्रकार बुद्धि सुख दु:ख आदि भी दृश्य है जैसे पृथ्वी आदि है। अत: दृश्य पदार्थों का दृश्यत्व तब ही साथ चलता है जब दृष्टा को माना जाता है और वही दर्शनकर्ता पुरुष है। इसलिए कोई पुरुष है ऐसा स्वीकार करना चाहिए। यह द्वितीय व्याख्या है। लेकिन पुरुष के असङ्ग होने के कारण दर्शनकर्तृत्व तो है ही नहीं। तब कहते हैं ऐसा नहीं है यहाँ पर जो पुरुष का दृष्टत्व कहा जा रहा है वह बुद्धि आदि सोपाधिक पुरुष के लिए कहा जा रहा है। इसी प्रकार दृष्टत्व था भोक्तृत्व भी बुद्धि आदि औपाधिक पुरुष के लिए ही सम्भव होता है। इस प्रकार से दोनों प्रकार की व्याख्या करने पर कोई दोष नहीं हैं।

1.11.5) कैवल्यार्थप्रवृत्ति

पुरुष को स्वीकार करने में पाँचवाँ हेतु है "केवल्यार्थ प्रवृत्ति"। केवल्य तीनों दु:खों की आत्यन्तिक निवृत्ति को कहा जाता है। तो वह पुरुष त्रिविध दु:ख से दूर होता है। शास्त्रों के सार को समझने वाले दिव्य महर्षियों में वह केवल्य प्रवृत्ति दिखाई देती है। दु:खादि वाली बुद्धि को स्वभाव से जीता नहीं जा सकता। बुद्धि आदि से अतिरिक्त पुरुष का दु:खादि से वियोग हो सकता है। इसलिए महर्षियों की केवल्यार्थ प्रवृति दिखाई देती है। इस कारण से महर्षिजन बुद्धि आदि से अतिरिक्त कोई पुरुष है जो इन तीनों दु:खों के विनाश रूप केवल्य की इच्छा करते हैं। इस प्रकार से पुरुष सद्भाव का पांचवां हेतु सांख्य कारिका में प्रतिपादित किया गया है।

1.12) पुरुषस्यबन्धमोक्षौ

दर्शनों के मुख्य विषय में सर्वश्रेष्ठ विषय है पुरुष का मोक्ष। वास्तविक रूप से देखा जाए तो मोक्ष के लिए ही सभी दर्शनों की प्रवृत्ति होती है। सांख्य सिद्धान्त में भी बन्धन तथा मोक्ष की व्यवस्था की आलोचना की गई है। अब प्रश्न यह होता है कि सांख्य सिद्धान्तों में तो पुरुष निर्विकार है तो वह किसी भी कर्म के साथ लिप्त हो ही नहीं सकता अत: उसका कर्त्तव्य भी सम्भव नहीं है तथा उससे धर्म तथा अधर्म की उत्पत्ति भी सम्भव नहीं है। धर्म और अधर्म के अभाव में सुख तथा दु:ख की भी उत्पत्ति सम्भव नहीं है। दु:ख की उत्पत्ति नहीं होने के कारण पुरुष में दु:ख सम्बन्ध रूप बन्धन तथा दु:ख ध्वंस रूप मोक्ष भी सम्भव नहीं है, अत: सांख्य सिद्धान्त के अनुसार तो पुरुष का बन्धन तथा मोक्ष दोनों ही सिद्ध नहीं होते हैं।

तब द्वितीय पक्ष उत्तर देता है कि भले ही शास्त्र में पुरुष का बन्धन तथा मोक्ष कहा गया है फिर भी बन्धन तथा मोक्ष बुद्धि के द्वारा ही होता है पुरुष तो जल में कमल वत् निर्लिप्त रहता है। पुरुष में तो बुद्धि के विद्यमान रहने से ही बन्धत्व तथा बुद्धि के अविद्यामान होने को ही मोक्ष कहा गया है।

पाठ-1

सांख्य दर्शन का सामान्य परिचय

ध्यान दें:

सृष्टि के आरम्भ में सबसे पहले प्रकृति से बुद्धि की ही उत्पत्ति हुई तथा बुद्धि के ही महत् तथा अन्तकरण आदि नाम हुए। इसके द्वारा ही सुख तथा दु:ख की छाया जीवात्मा पर पड़ती है जिससे वह आत्मा सुखी तथा दु:खी प्रतीत होती है। युग छाया ही पुरुष का संसार है। जब प्रकृति तथा पुरुष के नाश से विवेक के ज्ञान से बुद्धि का नाश होता है तब ही उसकी सुख तथा दु:ख की छाया का भी नाश हो जाता है। तब आत्मा शुद्ध रूप में अवशिष्ट रहती है। यह प्रकृति और पुरुष का ज्ञान विवेक ख्याति कहलाता है तथा इसे सदसत्ख्याति भी कहते हैं। तत्व साक्षात्कार होने पर विवेक ख्याति में स्थित पुरुष त्रिगुणात्मिका प्रकृति के बन्धन से मुक्त हो जाता है, उस समय संसार को रङ्गमञ्च की भांति देखता है और वह प्रकृति भी उस व्यक्ति का कोई कार्य नहीं करती है। तब पुरुष अपने शुद्ध स्वरूप का साक्षात्कार करता है। यह अवस्था ही मोक्ष कहलाती है। इसलिए सांख्य कारिका में कहा गया है।

तस्मान्न बध्यतेऽद्धा न मुच्यते नापि संसरति कश्चित्।
संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृति:॥ इति। [62]

पाठगत प्रश्न 1.3

1. पुरुष के सद्भाव के कितने हेतु कारिका में बताए गये हैं?

   (क) पांच (ख) सात (ग) आठ (घ) नौ

2. तीन गुण कौन-कौन से हैं?
3. पुरुष का बन्धन कैसे होता है?
4. पुरुष का मोक्ष कैसे होता है?
5. केवल्य किसे कहते हैं?
6. सुख क्या है?
7. दु:ख क्या है ?
8. पुरुष के अधिष्ठातृत्व सिद्धि हेतु कौन-सा सूत्र है?

पाठ सार

इस पाठ में आदि में सांख्य शब्द के अर्थ के विषय में विचार किया गया है। जिसमें पच्चीस सांख्य तत्वों के विषय में अनेकों मतों के बारे हमने अध्ययन किया। सांख्य दर्शन के प्रवर्तक आचार्य कपिल तथा उनका ग्रन्थ इस समय उपलब्ध नहीं होता है, इस कारण से वर्तमान में उपलब्ध ईश्वरकृष्ण की सांख्यकीरिका ही प्रमाणिक ग्रन्थ के रूप में स्वीकार की जाती है। जिसमें चार प्रकार के विभाग हैं। अन्य दर्शनों की भाँति ही सांख्य दर्शन की प्रवृत्ति भी तीनों दु:खों का आत्यन्तिक विनाश है। और वह विनाश प्रकृति तथा पुरुष के विवेक से सम्भव होता है। इस प्रकार प्रकृति तथा पुरुष के विवेक के लिए तथा उन दोनों के स्वरूप ज्ञान के लिए पुरुष के स्वरूप का विचार किया है। पुरुष ही असङ्ग, निर्विकार, अकर्ता, चेतन, साक्षी तथा केवल्य है। पुरुष के अस्तित्व सिद्धि के लिए पाँच हेतु बताए गये हैं

(क) संघातपरार्थत्वात् (ख) त्रिगुणादिविपर्ययात् (ग) अधिष्ठानात्

(घ) भोक्तृभावात् (ङ) केवल्यार्थं प्रवृत्ति

ध्यान दें:

आपने क्या सीखा

- सांख्य दर्शन का विस्तार पूर्वक परिचय,
- सांख्य शब्द के अर्थगत विषयों को जाना,
- सांख्य दर्शन के आचार्य तथा उनका परिचय,
- सांख्य दर्शन में स्वीकार 25 तत्त्वों को जाना,
- पुरुष का स्वरूप तथा उसे स्वीकार करने वालों के विषय में जाना।

पाठान्त प्रश्न

1. सांख्य दर्शन के आचार्यों के ग्रन्थों के विषय में परिचय दीजिए?
2. पुरुष के स्वरूप का संक्षेप में वर्णन कीजिए ?
3. सांख्य शब्द के विषय में लघु टिप्पणी लिखिए?
4. सांख्य दर्शन की प्रवृति तथा उसके कारण को समास विधि से बताइए?
5. सांख्य शास्त्र की केवल विकृतियों का परिचय दीजिए?
6. पुरुष के बन्धन तथा मोक्ष के विषय में लघु टिप्पणी लिखिए?
7. कौन किसलिए प्रकृति तथा विकृति को समझते हैं?
8. पुरुष के सद्भाव अर्थात् कारणों का जो वर्णन सांख्य कारिका में दिया गया है उसका संक्षेप में परिचय दीजिए?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 1.1

1. सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा तथा उत्तर मीमांसा से छः आस्तिक दर्शन हैं।
2. ये दर्शन वेद रूपी प्रमाण को मानते हैं अतः ये आस्तिक दर्शन हैं।
3. कपिल।
4. ईश्वरकृष्ण।
5. आध्यात्मिक, आधिभौतिक, तथा आधिदैविक है।
6. आत्यान्तिक दुःख निवृति।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 1.2

1. केवल प्रकृति, केवल विकृति, प्रकृति-विकृति, अनुभयरूप
2. पुरुष।
3. आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी पञ्चमहाभूत है। श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, जिह्वा, नासिका पांच ज्ञानेन्द्रियाएँ हैं। मुख, हाथ, पैर, गुह्य तथा शिश्न ये कर्मेन्द्रियाएं हैं तथा मन इस प्रकार से ये सोलह

ध्यान दें:

पदार्थ केवल विकृति है।

4. महत्, अहङ्कार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, तथा गन्ध ये सात पदार्थ प्रकृति तथा विकृति दोनों ही हैं।

5. सभी में प्रधान होने के कारण, लेकिन जिसका भी कोई अन्य कारण नहीं है, इसलिए वह केवल प्रकृति है अर्थात् कारण है।

6. सांख्य शास्त्र में पुरुष साक्षी केवल, दृष्टा, अकर्ता तथा मध्यस्थ है।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 1.3

1. **पाँच हेतु बताए गये हैं**

(1) संघातपरार्थत्वात् (2) त्रिगुणादिविपर्ययात् (3) अधिष्ठानात्,

(4) भोक्तृभावात्, (5) केवल्यार्थं प्रवृत्तेः च।

2. सत्व रज तथा तम ये तीन गुण होते हैं।

3. बुद्धि के साथ पुरुष का सम्बन्ध ही बन्ध कहलाता है।

4. बुद्धि के साथ पुरुष के सम्बन्ध का नाश ही मोक्ष कहलाता है

5. केवल्य से तात्पर्य है आत्यन्तिक रूप से तीनों दुःखों की निवृत्ति।

6. अनुकूलता का अनुभव ही सुख है।

7. प्रतिकूलता का अनुभव ही दुःख है।

8. "तत्सन्निधानादधिष्ठातृत्वं मणिवत्" इति।